International Journal of Applied Research 2016; 2(7): 860-863

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(7): 860-863
www.allresearchjournal.com
Received: 12-05-2016
Accepted: 13-06-2016

डॉ0 रीमा श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापिका योग एवं स्वास्थ्य विभाग देव संस्कृति विष्वविद्यालय शान्तिकुँन्ज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

Correspondence
डॉ0 रीमा श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापिका योग एवं स्वास्थ्य विभाग देव संस्कृति विष्वविद्यालय शान्तिकुँन्ज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

योगवाषिष्ठ में प्राण विद्या का स्वरूप : एक विवेचन

डॉ0 रीमा श्रीवास्तव

शोध सांरष
योगविद्या मानवीय जीवन का चरम उत्कर्ष करने वाली भारत की प्राचीनतम विधा है तथा चेतनात्मक विकास का गुह्य विज्ञान है। वैदिक काल में ही ऋषियों योगियों ने इस विज्ञान को प्राप्त कर लिया था। यही कारण है कि समूचे आर्ष साहित्य में योगविद्या के अनेकविध रूप और प्रणाली प्रकट हुए हैं। क्रमशः परवर्ती साहित्यों में इस विद्या का और अधिक स्पष्ट स्वरूप उभरकर सामने आया है। जैसे वेदों की अपेक्षा उपनिषद आदि में इसका अधिक विस्तार दिखाई देता है। इस बात से यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ श्रेष्ठ होते हुए भी मानवीय व्यवहार का दर्पण है। इस ग्रन्थ में मनुष्य की जीवनी शक्ति, अतीन्द्रिय क्षमता अर्थात् 'प्राण' जिसका विस्तृत वर्णन मिलता है जिसे वर्तमान परिदृष्य में समझा जाना आवश्यक है जिससे कि यौगिक दृष्टिकोण से हमारी योग साधना को प्रखरता मिल सके।
वेदों के अनुसार– "प्राण वह है जो समस्त देह को विशेष बल देता है और वायु से जीवनी शक्ति को खींच लेता है, उसे प्राण कहते हैं।" इसी को अथर्ववेद में इस प्रकार बताया गया है –"हे प्राण! हे अपान् इस देह को तुम मत छोड़ना। मिल–जुलकर इसी में रहना, तभी यह देह शतायु होगी।"[1] वृहदारयण्क उपनिषद में बताया गया है कि "प्राण ही यश एवं बल है।"[2] आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार "व्यक्तित्व की समग्र तेजस्विता का आधार यह प्राण है।"[3]
महर्षि पतंजलि के अनुसार "प्राणविद्या (प्राणायाम) से अविद्या रूपी अंधकार दूर होता है।"[4] यौगिक ग्रन्थों में अज्ञान को ही दुःखों का कारण बताया गया है और इस अविद्या के नष्ट होने से ज्ञान की ज्योति प्रकट होती है। ज्ञान की ज्योति प्रकट होने का अर्थ है, सौभाग्य की वृद्धि। आगे कहते हैं महर्षि पतंजलि कि ज्ञान की ज्योति प्रकट होने से मन एकाग्र हो जाता है। योगवासिष्ठ में बताया गया है कि मन ने ही प्राणों की कल्पना की और इस बात की भी कल्पना की कि प्राण उसकी गति है। मन प्राण के ऊपर निर्भर रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राणायाम के अभ्यास से योगी के विवेक ज्ञान के आवरण रूप क्लेश और अपुण्य क्षीण हो जाते हैं। शरीर के पृष्ठप्रदेश के मध्य में मेरूदण्ड है। यौगिक ग्रन्थों के आधार पर मेरूदण्ड के मध्य में इड़ा व पिंगला नाम की दो कोमल नाड़ियाँ होती हैं। ये नाड़ियाँ अस्थि और माँस की बनी हुई हैं। इस शोध पत्र के माध्यम से शोधार्थी द्वारा उपर्युक्त तथ्यों के व्यावहारिक स्वरूप व उनकी साधनाओं को और सुस्पष्ट व सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य बिन्दु : योगवाषिष्ठ, प्राण, प्राणविद्या

प्रस्तावना
वर्तमान मानवीय जीवन में विशेषकर युवावर्ग की संगतियों और व्यक्तिगत दृष्प्रवृत्तियों में भटका है। योगवासिष्ठ ऐसा ग्रन्थ है जिसमें श्रीराम के द्वारा इस बात को स्पष्ट किया गया है कि दुःख पहुंचाने वाली वृत्तियों से योग के द्वारा आत्मतत्व को प्राप्त करके दुःखों से मुक्ति पा सकता है। इस ग्रन्थ से आधुनिकता के मकर जाल व पाखण्डों के दुष्परिणाम से किस प्रकार से स्वयं को बचाया जा सकता है, इस बात को संकल्प बल के द्वारा समझाया गया। यह ग्रन्थ युवा वर्ग के लिए संजीवनी है। जिस प्रकार श्रीराम ने वशिष्ठ के द्वारा दिये गये ज्ञान से आत्मलाभ को प्राप्त किया था।
यह ग्रन्थ एक ऐसा ऐतिहासिक रत्न है जिसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। आज के परिपेक्ष्य में यह मानवीय जीवन के सभी पहलुओं का सामाजिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक आदि परिशोधन कर मनुष्य को श्रेष्ठ बनाता है। जिससे मनुष्य अपने स्वाभाविक स्वभाव में रहकर दिव्य शान्ति का अनुभव कर सकता है।

प्राण का अर्थ एवम् स्वरूप
'प्राण' शब्द की उत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग और अन् धातु से होती है। 'प्र' का अर्थ पूर्व से उपस्थित। अन् धातु का अर्थ जीवनी शक्ति या चेतना शक्ति। इस प्रकार प्राण शब्द का अर्थ है, "पूर्व से उपस्थित जीवन शक्ति।" इसे लेटेन्ट हीट या साइकिक फोर्स या वाइटल फोर्स भी कहा गया है।

प्राणयति जीवयति इति प्राणः।

प्राणियों के जीवन के आधार ही प्राण हैं। जीवधारियों को प्राणी इसलिए कहते हैं कि प्राण और जीवन एक ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। "प्राण आत्मा का गुण है।"[5] यह परमात्मा से परब्रह्म में निर्झर होता है। जीवन को प्राण कहते हैं और जीवन शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा का संयोग है। शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा के मिलने पर ही जीवन का निर्माण होता है। वेदों के अनुसार– "प्राण वह है जो समस्त देह को विशेष बल देता है और वायु से जीवनी शक्ति को खींच लेता है, उसे प्राण कहते हैं।" इसी को अथर्ववेद में इस प्रकार बताया गया है – "हे प्राण! हे अपान् इस देह को तुम मत छोड़ना। मिल–जुलकर इसी में रहना, तभी यह देह शतायु होगी।" वृहदारयण्क उपनिषद में बताया गया है कि "प्राण ही यश एवं बल है।" आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार "व्यक्तित्व की समग्र तेजस्विता का आधार यह प्राण है।" योगवासिष्ठ महारामायण के काकभुशुण्डि कथा प्रकरण में प्राण के बारे में कहा गया है कि जिस प्रकार चन्द्रबिम्ब से किरणें फैलती हैं, वैसी ही हृदय कमल में स्थित वायु विद्वानों द्वारा प्राण के नाम से कही जाती है।[6] "प्राण एक ऐसी ऊर्जा है जो जन्म देती है और नष्ट करती है तथा जो सभी स्तरों में ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।"[7]

प्राण का महत्व

प्राण बाह्य व आन्तरिक रूप से सभी जगह संव्याप्त है। यह एक स्पन्दन शक्ति है। वायु का शुद्ध सात्विक व सूक्ष्म अंश प्राण है। प्राण वायु हवा में मिली हुई ऑक्सीजन को कहते हैं, किन्तु प्राण सूक्ष्म चेतना है, उसमें क्रिया व्यवस्था, विचारणा व भावना का समावेश है। ऑक्सीजन पदार्थ है और प्राण पदार्थ के साथ जुड़ी हुई चेतना। वायु के बिना हम जीवित रह सकते हैं, प्राण के बिना नहीं। शरीरगत प्राण चुम्बकत्व के रूप में सजातीय तत्वों को अपनी ओर आकर्षित करती है। योगवासिष्ठ में इस सन्दर्भ में उल्लेख है कि जिस प्रकार जल में द्रव्य शक्ति, अग्नि में तेज शक्ति, आकाश में शून्य शक्ति की स्थिति है, ठीक उसी प्रकार प्राण वायु से स्पन्दन शक्ति विद्यमान है।

जैसे द्रव्य की छाया की गति द्रव्य की गति के समान होती है, वैसे ही प्राण रूप भी मानसिक है।[8] प्राण का स्वरूप वायु की तरह है अर्थात् नीलाभश्वेत धूम के समान। प्राण जिस जन्तु या वस्तु में रहता है उसी का आकार धारण कर लेता है। आचार्य श्रीराम शर्मा जी के शब्दों में "प्राण सम्पूर्ण कल्पना कलंकों से रहित है और यह सभी कलाओं से सदैव परिपूर्ण रहता है।"[9] नन्दलाल दशोरा जी के अनुसार प्राण सम्पूर्ण ज्योतियों का प्रकाशक है। प्राण संकल्प–विकल्प आदि भावनाओं से रहित प्राण चेतना तत्वरूप परमात्मा है।

प्राणविद्या की अवधारणा

सुरदुर्लभ मनुष्य योनि प्राप्त करने के बाद भी जीव अपने पूर्व संस्कारों के कारण कई प्रकार के दुःखों से घिर जाता है, वशिष्ठ जी श्रीराम को बता रहे हैं कि संसार से पार उतरने की युक्ति के लिए योग कल्याणकारी है। इसमें तीन बातें प्रमुख हैं–

1. एक तत्व का गहरा अभ्यास
2. प्राणों का निरोध
3. मन का निग्रह

प्राण की शक्ति के निरूद्ध हो जाने पर हे राम अवश्य ही मन विलीन हो जाता है, मन ने ही प्राणों की कल्पना की है और इस बात की भी कल्पना की है कि प्राण उसकी गति है और मन के बिना उसकी स्थिति नहीं है। इससे ही वह प्राण के ऊपर निर्भर रहता है। मन समझता है कि प्राण उसका जीवन है।

जब प्राण ही जीवन है तो इसके कार्य क्या हैं? यह शरीर में कहाँ पर स्थित है? यह किसका आधार है? इसकी नित्य स्थिति क्या है? इन बातों को हे राम मैं (वशिष्ठ) तुम्हें प्राणविद्या के द्वारा बतलाता हूँ। ऐसा कहकर वशिष्ठ जी श्रीराम को प्राण विद्या के बारे में बतलाते हैं– "प्राण विद्या से जीव के सब दुःखों का नाश होता है और सब प्रकार के सौभाग्य की वृद्धि होती है।"[10] महर्षि पतंजलि के अनुसार "प्राणविद्या (प्राणायाम) से अविद्या रूपी अंधकार दूर होता है।"[11] यौगिक ग्रन्थों में अज्ञान को ही दुःखों का कारण बताया गया है और इस अविद्या के नष्ट होने से ज्ञान की ज्योति प्रकट होती है। ज्ञान की ज्योति प्रकट होने का अर्थ है, सौभाग्य की वृद्धि। आगे कहते हैं महर्षि पतंजलि कि ज्ञान की ज्योति प्रकट होने से मन एकाग्र हो जाता है।[12]

योगवासिष्ठ में बताया गया है कि मन ने ही प्राणों की कल्पना की और इस बात की भी कल्पना की कि प्राण उसकी गति है। मन प्राण के ऊपर निर्भर रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राणायाम के अभ्यास से योगी के विवेक ज्ञान के आवरण रूप क्लेश और अपुण्य क्षीण हो जाते हैं। शरीर के पृष्ठप्रदेश के मध्य में मेरूदण्ड है। यौगिक ग्रन्थों के आधार पर मेरूदण्ड के मध्य में इड़ा व पिंगला नाम की दो कोमल नाड़ियाँ होती हैं। ये नाड़ियाँ अस्थि और माँस की बनी हुई हैं। इसका तात्पर्य है कि यह विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है जिससे शरीर में संचार, नाड़ी संचालन, पाचनक्रिया प्रगाढ़ निद्रा, स्नाविक दृढ़ता, स्फूर्ति एवं मानसिक विकास, स्वस्थ शरीर, प्रसन्नता, उत्साह, परिश्रम की योग्यता बढ़ती है। जहाँ इन सब योग्यताओं की वृद्धि होती है वहाँ पर अवश्य ही आत्मोन्नति के द्वार खुलते हैं। इनमें ऊपर और बीच जाने वाली नाड़ियों समेत कोमल पंखुड़ियों वाले कमल के फूल के जोड़ों के समान तीन यन्त्र शरीर के ऊपरी भाग में स्थित हैं। तीन यन्त्रों से तात्पर्य है– दो फेफड़े, एक हृदय।

इन यन्त्रों के पत्र अर्थात प्राण प्रवाह का वायु प्रवाह को ले जाने वाली नाड़ियाँ। वायु के व्याप्त होने पर उनके पत्र धीरे–धीरे हिलते हैं। उन पत्तों के हिलने से वायु की वृद्धि होती है। जैसे वायु द्वारा लता और पत्रों के स्पन्दित होने पर बाहर चारों ओर हवा फैलती है। भीतर जब वायु का आकार बढ़ता है तो वह ऊपर नीचे चारों ओर शरीर में नाड़ियों द्वारा फैलती है।[13] इसका तात्पर्य है कि लम्बी गहरी श्वास लेने से फेफड़ों के अन्दर स्थित वायु कोषों से मृत वायु (जो कि स्थान घेरे रहती है) बाहर निकलती है तथा शुद्ध वायु वायुकोषों में भरती है। वहाँ से वह नाड़ियों द्वारा रक्त में घुलकर शरीर के अंग प्रत्यंगों तक पहुँचती है। हृदय में प्रविष्ट वायु शरीर में फैलकर नाना प्रकार की चेष्टायें करती हुई और विशेष स्थानों में रहती हुई प्राण अपान समान, उदान व्यान आदि नामों से प्रसिद्ध होती है।

वशिष्ठ संहिता में बताया गया है कि हृदय क्षेत्र में प्राण, गुदा प्रदेश में अपान, नाभिमण्डल में समान, कण्ठ प्रदेश में उदान तथा समस्त शरीर में व्यान की उपस्थिति बतलायी गयी है।[14] शरीर के भीतर हृदय में स्थित तीनों यन्त्रों में प्राण की सारी शक्तियाँ रहती हैं और वहाँ से इस प्रकार शरीर में फैलती हैं जैसे– चन्द्रमा से किरण फैलती है, वे प्राण शक्तियां आती–जाती हैं, आकर्षण करती हैं, हरण करती हैं, विहार करती हैं, ऊपर चढ़ती हैं, नीचे गिरती हैं। हृदय कमल में रहने वाली वायु प्राण कहलाती है। शरीर में रहने वाली वायु के दो भाग हैं। एक भाग की गति ऊपर की ओर है तथा एक की नीचे की ओर है। वे क्रमशः प्राण और अपान के नाम से जानी जाती हैं। इस प्राण और अपान की गति कमल नाल के एक तन्तु के हजारवें हिस्से से भी सूक्ष्म है। प्राण और अपान की गति को जानकर और इन प्राणों को वश में करके योगी स्वस्थ रहकर सुख भोगता है। यही आत्मा की अवस्था है। इसी प्रकार जब प्राण को अपान ग्रस्त कर लेता है (प्राण और अपान एक हो जाता है) उस स्थान को प्राप्त होकर जन्म नहीं होता है। क्योंकि यही आत्मा का आधार है। यह स्थान है जिसमें प्राण और अपान, उदय और अस्त, सूर्य और चन्द्रमा दोनों का समागत होता है, यही आत्मा की वह अवस्था है। जबकि प्राण की गति का बिल्कुल निरोध हो जाए, इसी में स्थित होना योगी का ध्येय है।

प्राणषक्ति अर्थात् कुण्डलिनी

कुण्डलिनी एक प्रसुप्त ज्योतिपुंज है। कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'कुण्डल' शब्द से हुई जिसका अर्थ है, घेरा बनाए हुए। यह एक परम्परागत मान्यता है जिसके सही स्वरूप को प्रायः नहीं समझा गया है, वस्तुतः कुण्डलिनी शब्द कुण्ड से बना है और इसका अर्थ है कोई गहरा स्थान, छेद या गड्ढा। हवन के लिए जहाँ आग जलाते हैं उसे भी कुण्ड कहते हैं।

योगवासिष्ठ में कुण्डलिनी के बारे में बताया गया है कि ''प्राण अपान वायु के अधीन हो जाने पर राज्य से लेकर मोक्ष पर्यन्त सभी सम्पत्तियाँ सुख साध्य हो जाती हैं। गोल कुण्डलाकार से युक्त, नाभि स्थान में समाश्रित सौ नाड़ियों की आश्रय आन्त्रवेष्टनिका (सुषुम्ना) नाम की नाड़ी है। यह नाड़ी सब प्रकार के प्राणियों में स्थित है। गुदा से लेकर भौंह के बीच तब तक छिद्रों का स्पर्श करती हुई यह सुषुम्ना नाड़ी मन की वृत्तियों से भीतर चंचल और बाहर प्रणादि से स्पन्दयुक्त सदा स्थित रहती है। वह कुण्डलाकार वाहिनी है, इसलिए 'कुण्डलिनी' नाम से कही जाती है।''[15] योगियों के अनुसार ''कुण्डलिनी शब्द का तात्पर्य उस शक्ति से है जो गुप्त निष्क्रिय अवस्था में है किन्तु उस शक्ति के जाग्रत होने पर उसे अपनी अनुभूति के आधार पर ही महाकाली, महासरस्वती, महालक्ष्मी अन्य किसी भी नाम से जाना जाता है।''[16]

हठयोग के प्रसिद्ध ग्रंथ हठप्रदीपिका में इसके लिए कुटिलांगी, कुण्डलिनी, भुजंगी, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरून्धती इन सात पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया गया है।[17] श्वेताश्वर उपनिषद् में यम नचिकेता संवाद के अन्तर्गत कुण्डलिनी शक्ति को योगाग्नि बताया गया है और इसकी तुलना पवित्र यज्ञाग्नि से की गई। दैनिक योग प्रदीपिका में आई. लोहेन ने इसे स्प्रिट फायर कहा है और आत्मा की ज्वलन्त अग्नि के रूप में विवेचना की है। पाश्चात्य योगविद्या विशारद सर जान वुडरफ ने इसे 'सर्पेन्ट फायर' के नाम से सम्बोधित किया है। भक्ति ग्रंथों में 'आह्लादिनी शक्ति' 'वेदान्त की योगमाया' 'आद्यशक्ति' इस कुण्डलिनी शक्ति के पर्याय हैं।

जीव षक्तिः कुण्डलाख्या प्राणकरूप तैजसी।
महाकुण्डलिनी प्रोक्ता परब्रह्मा स्वरूपिनी।।

योगकुण्डलिनी उपनिषद

समष्टि रूप में यह पराकुण्डलिनी महाकुण्डलिनी महाशक्ति अत्यन्त कुण्डलिनी, योग कुण्डलिनी आदि नामों से पुकारी जाती है। योग कुण्डलिनी उपनिषद् में समस्त जगत को चलाने वाली शक्ति महाकुण्डलिनी और व्यष्टि जीव सत्ता की नियन्त्रण शक्ति को कुण्डलिनी कहा गया है। योगवासिष्ठ में कहा है कि कुण्डल आकार में उसका स्पन्दन होने के कारण उसका नाम कुण्डलिनी शक्ति है। वह प्राणियों की परम शक्ति है।[18] कुण्डलिनी एक महाशक्ति का नाम है जो दिव्य ऊर्जा है। इसे जीवन अग्नि (फायर ऑफ लाइफ) कहा है।इस प्रकार से कह सकते हैं कि जो कुछ भी चमक, तेजस्विता, आशा, उल्लास, उमंग, उल्लास दिखाई पड़ता है उसे उस अग्नि का प्रभाव कहा जा सकता है। शरीर में बलिष्ठता, निरोगता, स्फूर्ति, क्रियाशीलता के रूप में और मस्तिष्क में तीव्र बुद्धि, दूरदर्शिता, स्मरण शक्ति, सूझ–बूझ, कल्पना आदि विशेषताओं के रूप में यही परिलक्षित होता है। आत्मविश्वास और उत्कर्ष की अभिलाषा के रूप में धैर्य एवं साहस के रूप में इसी शक्ति का चमत्कार दृष्टिगत होता है। रोगों से लड़कर उन्हें परास्त करने और मृत्यु की संभावनाओं को समाप्त करके दीर्घकालीन जीवन प्रदान करने वाली शक्ति कुण्डलिनी ही है।

प्राण साधना की उपादेयता एवम् प्रभाव

इस ग्रंथ में आधुनिकता के मकड़ जाल व पाखण्डों के दुष्परिणाम से किस प्रकार से स्वयं को बचाया जा सकता है, इस बात को संकल्प बल के द्वारा समझाया गया है। यह ग्रंथ युवा वर्ग के लिए संजीवनी है, जिस प्रकार श्रीराम ने वशिष्ठ के द्वारा दिये गये ज्ञान से आत्म लाभ को प्राप्त किया था। अपनी आध्यात्मिक महत्ता के साथ ही यह ग्रन्थ एक ऐसा ऐतिहासिक रत्न भी है जिसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। आज के परिपेक्ष्य में यह मानवीय जीवन के सभी पहलुओं सामाजिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक आदि का परिशोधन कर मनुष्य को श्रेष्ठ बनाता है। जिससे मनुष्य अपने स्वाभाविक स्वभाव में रहकर दिव्य शान्ति का अनुभव कर सकता है।

आज मानव मात्र ने जीवन के परम लक्ष्य, अपने व्यक्तित्व के अन्तरतम मूलभूत पक्ष को विस्मृत कर दिया है। यही विस्मृति उसके समस्त दुखों का कारण बनी हुई है। प्रस्तुत शोधपत्र के द्वारा मानव मात्र को उसके परम लक्ष्य की पुनर्स्मृति कराने, इसकी जीवन में आवश्यकता समझाने के साथ ही इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसकी रूचि, प्रवृत्ति के अनुरूप अनेकों उपायों को बताने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

योगवासिष्ठ के यौगिक सम्प्रत्यय में योग का गहरा अर्थ लिया गया है। इस ग्रंथ में योग को इस संसार सागर से पार होने की युक्ति कहा गया है। इसमें संसार को कल्पनामय मिथ्यामय बताया गया है। इसे भ्रम मात्र स्वप्न के समान बताते हुए कहा गया है कि निस्सार संसार को सार युक्त मान लेना ही जीव के दुःखों का कारण है। मनुष्य को यह भ्रान्ति अज्ञानता के कारण होती है। यदि मनुष्य किसी साधन द्वारा ज्ञान प्राप्त कर ले तो वह समस्त दुःखों से मुक्त हो सकता है। योग वासिष्ठ के अनुसार मनुष्य को इसी की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना चाहिए। इस ग्रंथ में योग को साधन रूप बताते हुए कहा गया है कि योग का चरम उद्देश्य मुक्ति है। योग शास्त्रों में अज्ञानता दूर करने के लिये बौद्धिक विकास अर्थात् बुद्धि को विवेक, प्रज्ञा स्तर तक विकसित करने की बात की जाती है। यह ज्ञान दृष्टि ही संसार के पदार्थों का बोध कराती है। इसके लिए व्यक्ति परिष्कार की प्रक्रिया जहाँ से प्रारम्भ करता है वह है बुद्धि। बुद्धि को जितना परिष्कृत किया जाएगा, उतनी ही शुद्ध और परिष्कृत होती जायेगी और तब यह संकल्प, विकल्प, अनिश्चितता को अपने तर्क–वितर्क से छांटकर निश्चयात्मक ज्ञान कराती है।

योगवासिष्ठ में वर्णित है कि प्रकृति परमात्मा की शक्ति है और इसी परमात्म शक्ति (प्रकृति) का आत्मा के साथ तादात्म्य है। आत्मा का स्पन्दन ही प्रकृति कहलाती है। वस्तुतः चेतन स्वरूप प्राण चिन्मय परब्रह्म परमात्मा का ही अंश है। जीव अनादि और अनन्त है। योगवासिष्ठ के सिद्धान्तों में यह भी बताया गया है कि जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है, वस्तुतः वह सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर का अंश है। इस शोध पत्र के माध्यम से योगवाशिष्ठ में निहित प्राण की अवधारणा, स्वरूप व महत्व को सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अथर्ववेद, 7.52.–2
2. वृहदाराण्यक उपनिषद, 1/2/6
3. आचार्य श्रीराम शर्मा–गायत्री और उसकी प्राणशक्ति, पृ0 03
4. पातंजल योगसूत्र, 2/52
5. पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, गायत्री की पंचकोशीय साधना एवम् उपलब्धियां, वांगमय खण्ड 13, पृ0 5.10
6. दशोरा, नन्दलाल–महर्षि वाल्मीक कृत योगवाशिष्ठ महारामायण, पृ0 300
7. आयंगर, स्वामी बी0के0एस0, योग प्रदीप, पृ0 32
8. योगवाशिष्ठ, 5/13/83
9. पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य,योगवाशिष्ठ द्वितीय खण्ड, पृ0 89
10. योगवाशिष्ठ संहिता, 6/1, 24/8–9
11. पातंजल योग सूत्र, 2/52
12. पातंजल योग सूत्र, 2/54
13. योगवाशिष्ठ संहिता, 6/1, 24/23–24
14. वशिष्ठ संहिता, 3/7, पृ0 64

15. कल्याण, संक्षिप्त योगवाशिष्ठ अंक (35वें वर्ष का विशेषांक) पृ0 373–374
16. आचार्य श्रीराम शर्मा, अखण्ड ज्योति, वर्ष 1964, अंक 9, पृ0 41
17. हठयोग प्रदीपिका, 3/100
18. योगवाशिष्ठ, 6/1/80/42